मसूरी का प्रसंग

मैंने अपनी आत्मकथा के पृ. १३४-३५ पर अपने जीवन की दो गहरी भूलों का ज़िक्र किया है. इनमें एक तो अपनी गोद लेनेवाली माता के तथा दूसरा मसूरी में एक किशोरी के प्रति मेरे व्यवहार की है. अपनी माता के प्रति किये गए अपने व्यवहार पर तो मैं अपनी आत्मकथा में पर्याप्त प्रकाश डाल चुका हूँ परन्तु मसूरी की घटना का तो वहाँ उल्लेख मात्र है और उसका विस्तृत वर्णन वहाँ नहीं हो सका है जिसे यहाँ दे रहा हूँ. इन दोनों के प्रति किये गये अपने अभद्र व्यवहार के लिए मैं कभी अपने को क्षमा नहीं कर सकता और उनकी याद आते ही आज भी मेरा हृदय पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगता है.

मसूरी की घटना इस प्रकार है. सन १९४१ के ग्रीष्मावकाश में मैं अपने साहित्यगुरु, बेढब बनारसी के नाम से प्रसिद्ध श्रद्धेय कृष्णदेवप्रसादजी गौड़, जिन्हें मैं तथा अन्य सभी लोग मास्टर साहब के नाम से पुकारते थे, तथा एक उदीयमान कहानी लेखक श्री इन्द्रशंकर मिश्र के साथ मसूरी गया था. बाद में बेढबजी अपनी पत्नी को भी बनारस जाकर ले आये थे.

मसूरी में जहाँ हम लोग ठहरे थे उसीके पड़ोस में पोस्ट ऑफिस के एक अधिकारी का निवास था. उनकी किशोरी बहन के मन में मेरे प्रति तीव्र प्रेम-भावना जाग उठी. प्रत्यक्षत: तो यह मेरे रूप-रंग के कारण ही थी क्योंकि उससे परिचय या भावों के आदान-प्रदान का कोई अवसर नहीं आया था. इसे किसी पूर्व जन्म के संस्कारों की उपज ही कहा जा सकता है. इस प्रकार के किसी अपरिचित के प्रति गहरा आकर्षण और एकाएक प्रेम हो जाने में आज मुझे कुछ भी अकल्पित नहीं लगता. मैंने स्वयं अपनी मसनवी 'प्रीत न करियो कोय' में ऐसी प्रेम-भावना का वर्णन किया है.

उपर्युक्त वर्णन से पाठक समझ सकेंगे कि मैं आज इस प्रकार के प्रेम के उद्रेक को अस्वाभाविक नहीं मानता परन्तु उस समय तो मेरे ऊपर जाने कैसा भूत सवार हो गया था कि मैं इसके प्रति तनिक भी सहानुभूति नहीं दिखा सका. यही नहीं, मैंने उपेक्षा और तिरस्कारपूर्वक क्रूरतापूर्ण व्यवहार का ही प्रदर्शन किया.

मसूरी पहुँचने के तीसरे या चौथे दिन मैं पहाड़ी से उतर कर अपने आवास की ओर अकेला आ रहा था. सहसा मैंने देखा कि एक किशोरी मेरा मार्गावरोध-सी करती मेरे मार्ग के बीच में खड़ी मुस्कुरा रही है. मैं उससे अपने को बचाता हुआ उसकी बगल से निकल आया. थोड़ी देर बाद हमारा पहाड़ी नौकर एक कागज़ लेकर आया जिसे वह मास्टर साहब (बेढबजी) के हाथ में देने लगा. हमारे आवास के सामने खुली हुई जगह थी जिसके दूसरे छोर पर खड़ी उस किशोरी ने पत्रवाहक को वह पत्र मुझे देने का इशारा किया. पत्र का मज़मून पढ़ कर मैं अवाक् रह गया. उसमें मार्ग में किये गये मेरे व्यवहार का उल्लेख तथा मेरे प्रति अपने प्रेम का अत्यंत मार्मिक वर्णन था.

मैंने चकित होकर मास्टर साहब की ओर देखा. वे और इन्द्रशंकर मिश्र पास खडे मुस्कुरा रहे थे. उन्होंने उस किशोरी द्वारा पहले भेजे गये दो-तीन पत्र मुझे पकड़ा दिये. मेरे अनजानते में ये पत्र जो मुझे देने थे, उस पत्रवाहक ने भूल से मास्टर साहब को पकड़ा दिये थे.

उसमें किसीका नाम संबोधन के रूप में तो था नहीं अत: मास्टर साहब ने अपनी ओर से उसके पहले पत्र का गोलमटोल उत्तर दे दिया था कि तुम्हारा यह प्रेम मेरे लिए कितने दिन ठहरेगा. इस पत्र का उस किशोरी ने पुन: उत्तर देकर अपनी प्रेम की उत्कटता का वर्णन किया था. उस दिन पहाड़ी से उतरते समय के मेरे व्यवहार से उसको संदेह हो गया था कि दाल में कुछ

काला है और उसने इशारे से इस बार पत्र मेरे हाथ में दिलाया तथा मास्टर साहब को अलग से लिखा कि आप तो पिता तुल्य है. वे पत्र उसने मुझे लिखे थे और उस नौकर की भूल से उन्हें पकड़ा दिये गये थे. अस्तु.

मैंने इस बार उस किशोरी को अपनी ओर से पत्र भेजा कि मेरा विवाह कुछ दिनों पूर्व हो चुका है इसलिए मैं उसके प्रेम को स्वीकार नहीं कर सकता. परन्तु मेरे इस पत्र का कोई प्रभाव नहीं पडा. उसकी प्रेम-भावना दिनोंदिन विकसित होती गयी और नित्य उसने प्रतिदिन दो-तीन पत्र भेजने प्रारंभ कर दिये जिनमें उसकी मानसिक पीड़ा तथा प्रतिदिन मेरे प्रति गहराती हुई उसकी प्रेम-भावना का मार्मिक वर्णन रहता था.

प्रारम्भ में तो वह हमारे नौकर के हाथों पत्र भेजती थी परन्तु बाद में उसने मास्टर साहब की पत्नी से, जो बाद में मसूरी आ गयी थीं, मित्रता कर ली और उनसे मिलने के बहाने दिन में दो-तीन बार आते-जाते हुए पत्र स्वयं मेरे बिस्तर पर डालने लगी. उसका प्रेम उस सीमा पर पहुँच गया था जहाँ से लौटना संभव नहीं था. उसने अपने पत्रों में स्पष्ट कर दिया था कि जब तक मैं वहाँ हूँ तब तक तो वह मुझे देखकर और अपनी दशा का वर्णन करके थोड़ा संतोष पा लेती है परन्तु मेरे चले जाते ही आत्महत्या के सिवा उसके पास दूसरा विकल्प नहीं है.

उसके पत्रों के उत्तर में मैंने अत्यंत कठोरता धारण कर ली और मास्टर साहब के कई बार कहने के बावजूद मैं दो शब्द भी ऐसे कहने या लिखने को तैयार नहीं हुआ जो उसको थोड़ा ढाढ़स दे सकते. यद्यपि मैंने उसे अपने कुछ दिन पूर्व हुए विवाह की बावत लिख भेजा था परन्तु उसे दो-चार मीठे शब्द कहकर मैं अवश्य उसको समझा-बुझा सकता था. परन्तु मेरी कठोरता भी उसके प्रेम के समान चरम सीमा पर थी और यह जानते हुए भी कि वह मेरे वियोग में आत्महत्या कर सकती है, मैंने उससे दो शब्द बोल लेने

की भी उदारता नहीं दिखाई.

वह प्रतिदिन मेरे सामने बिस्तर पर अपने पत्र पटकती हुई मास्टर साहब की पत्नी से मिलने चली जाती थी और ऐसा दिन में दो-तीन बार होता था. मैं उसके पत्र पढ़कर मास्टर साहब को पकड़ा देता था. एक डेढ़ महीने के प्रवास में उसके भेजे हुए सौ से अधिक पत्र एकत्र हो गये थे.

ज्यों-ज्यों हमारे जाने के दिन आने लगे, उसकी विकलता बढ़ने लगी. मैं नहीं जानता कि मेरे जाते ही आत्महत्या के अपने स्पष्ट निर्णय को, जिसे वह कई बार लिख चुकी थी, कार्यान्वित किया या नहीं परन्तु उसे उस स्थिति तक पहुँचाने का दोष तो मेरे सिर पर है ही क्योंकि मैं यदि उसके प्रति इतनी निष्ठुरता नहीं धारण कर लेता और उसे समझाकर कुछ मीठे शब्दों द्वारा उसे सांत्वना देता तो संभवत: उसकी मनोव्यथा कुछ दूर हो जाती.

जिस दिन हमलोगों का मसूरी से लौटने का दिन था, उसने स्पष्ट लिख दिया था कि वह उसके जीवन का अंतिम दिन है. उसने अपने अंतिम पत्र में लिखा था कि वह रात भर जागती रही है. यह साफ दीखता था कि वह रात भर जागती रही थी और रोती रही थी. रोने से उसकी आँखें लाल हो रही थीं. हमारा सामान बाँधा जा रहा था और वह मास्टर साहब की पत्नी से मिलने के बहाने द्वार पर खड़ी आँसू बहा रही थी. आवास से एक मील दूर कुली पर सामान लदवा कर हमें पैदल बस स्टॉप तक पहुँचना था, वह भी साथ-साथ चल रही थी.

बस में बैठा-बैठा मैं उसकी ओर जब भी देखता तो उसे टकटकी बाँधे अपनी ओर देखते पाता और अपना मुँह फिराने की चेष्टा करता. बस के चलते समय मैंने उसकी ओर देखा और उसकी वे जल बरसाती आँखें जो रात भर जागने तथा रोने से लाल हो रही थीं आज इतने दिनों बाद भी मेरी स्मृति में ज्यों की त्यों अंकित हैं.